**ओ३म्**

**‘मैं महानतम पुरुष ईश्वर को जानता हूं’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

यदि किसी मनुष्य ने ईश्वर या सृष्टि आदि विषयों को जानना है तो उसे इन विषयों के जानकार विद्वान व ज्ञानी पुरुषों की शरण लेनी होगी। किसी एक ज्ञानी पुरुष को प्राप्त होकर हम उससे, जितना वह ईश्वर वा सृष्टि के बारे मे जानता है, ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अब यदि हम उससे पूछे कि आपको यह ज्ञान कहां से प्राप्त हुआ तो वह परम्परा का उल्लेख करेगा व कुछ अपने ऊहापोह, चिन्तन-मनन व अन्वेषण की बात कह सकता है। यह सृष्टि वैदिक मान्यताओं के अ नुसार विगत 1.96 अरब वर्षों से अस्तित्व में है। इस अवधि में लगभग 49 करोड़ मनुष्यों की पीढि़यां उत्पन्न होकर कालकवलित हो चुकी हैं। मनुष्य का आत्मा सत्य का जानने वाला होता है परन्तु अविद्या आदि अनेक दोषों के कारण वह सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि यदि मनुष्य अपनी अविद्या को दूर कर दे तो वह सत्य व ईश्वर एवं सृष्टि का यथावत ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अविद्या को हटाने का एक ही मार्ग है कि हम विद्या प्राप्ति का संकल्प लेकर विद्या से युक्त विद्वानों की संगति करें और अपनी सभी शंकाओं को दूर करने सहित ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि के कारण व कार्य रुप को जानें। स्वयं को, सृष्टि व ईश्वर को जानने की इच्छा व आवश्यकता सृष्टि की प्रथम पीढ़ी में उत्पन्न स्त्री वा पुरूषों को भी अवश्य हुई होगी क्योंकि हम जानते हैं कि आत्मा चेतन तत्व वा पदार्थ है और ज्ञान व कर्म इसके दो स्वाभाविक धर्म वा गुण हैं। ज्ञान की पिपास व जिज्ञासु स्वभाव इसका शाश्वत् गुण वा स्वभाव है।

सृष्टि के आरम्भ में पहली पीढ़ी के लोगों के लिए आचार्य व गुरु कहां से आये थे? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है कि उन्हें भी अन्य सामान्य मनुष्यों की भांति ईश्वर ने ही उत्पन्न किया था। इन आचार्यों को ईश्वर ने चार वेदों का ज्ञान दिया और उन्हें इस वेदों के ज्ञान की अन्य मनुष्यों में प्रचार व उपदेश की प्रेरणा की। उन्होंने ऐसा ही किया। परम्परा से ज्ञात होता है कि ईश्वर ने चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को क्रमशः चार वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का शब्दार्थ वा वाक्य-पद-अर्थ सहित ज्ञान दिया था। इन चार ऋषियों में अन्य उत्पन्न मनुष्यों में सबसे योग्य ब्रह्मा नाम के ऋषि को क्रमशः एक-एक करके चारों वेदों का ज्ञान दिया। इस प्रकार अन्य मनुष्यों को शिक्षित करने के लिए पांच ऋषि, शिक्षक व आचार्य उपलब्ध हो गये थे जिनसे अध्ययन कर सृष्टि की पहली पीढ़ी के सभी मनुष्य ज्ञानी बने थे। तभी से वेदाध्ययन की परम्परा आरम्भ हुई जो अबाध रूप से महाभारतकाल व उससे कुछ समय पूर्व तक सुचारु रूप से चलती रही। महर्षि दयानन्द के अनुसार यह परम्परा ब्रह्मा से लेकर जैमिनी ऋषि पर्यन्त चली और उसके बाद अवरोध उत्पन्न हुआ। ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में महर्षि दयानन्द ने अपने पुरुषार्थ और वैदुष्य से उस परम्परा का पुनरुद्धार किया और आज उनके मार्गदर्शन के अनुसार संस्कृत व्याकरण की अष्टाध्यायी-महाभाष्य-निरुक्त पद्धति पर संचालित गुरुकुलों में उस वेदाध्ययन की परम्परा पुनः विद्यमान है। महर्षि दयानन्द को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने वेदाध्ययन की प्राचीन विलुप्त असम्भव परम्परा को अपने पुरुषार्थ एवं वैदुष्य से पुनः प्रवर्तित व प्रचलित किया। महर्षि दयानन्द का यह ऋण संसार कभी चुका नहीं सकता।

वेद ईश्वर का ज्ञान है जो सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर आदि चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को देता है। वेद के मन्त्रों के सत्यार्थ का दर्शन पूर्ण योगी, ज्ञानी, विद्वान व व्याकरण के आचार्यों को होना ही सम्भव होता है। अतः हमारे सभी वेदाचार्य व ऋषि ब्रह्मचारी, ज्ञानी, विद्वान, योगी व व्याकरण ज्ञान से सर्वथा सम्पन्न हुआ करते थे और ऐसे ही महर्षि दयानन्द सरस्वती भी थे। महर्षि दयानन्द ने वेदों के बारे में, वेदों का तलस्पर्शी अध्ययन कर, घोषणा की कि वेद सर्वव्यापक, निराकार, सच्चिदानन्दस्वरुप आदि ईश्वर का ज्ञान हैं और यह चार वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं। इस निष्कर्ष पर पहुंच कर उन्होंने संसार के लोगों के उपकारार्थ यह भी कहा है कि वेदों का पढ़ना व पढ़ाना तथा सुनना व सुनाना सभी आर्यों अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द जी ने यह नियम इस लिए बनाया है कि जिससे संसार से अज्ञान का नाश व ज्ञान की वृद्धि हो। इसी बात को उन्होंने एक अन्य नियम में भी कहा है। आर्यसमाज के इस आठवें नियम में कहा गया है कि सभी मनुष्यों को **‘‘अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।”** आईये ईश्वर, वेद और महर्षि दयानन्द विषयक उपर्युक्त विचारों के प्रकाश में वेदों के एक प्रसिद्ध मन्त्र पर विचार करते हैं जिसमें ईश्वर के सत्य स्वरुप का प्रकाशन किया गया है। यह ईश्वर का स्वरुप ऐसा है, जैसा कि अन्य किसी मत व सम्प्रदाय में नहीं पाया जाता। यह मन्त्र यजुर्वेद के अध्याय 31 का 18 हवां मन्त्र है जा निम्नवत् हैः

**ओ३म् वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।**

**तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।**

इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि मैंने जान लिया है कि परमात्मा महान् है, सूर्यवत् प्रकशमान है, अन्धकार व अज्ञान से परे है। उसी को जानकर मनुष्य दुःखदायी मृत्यु से तर सकता है, बच सकता या पार हो सकता है। मृत्यु से बचने व उससे पार होने का संसार में अन्य कोई उपाय नहीं है। मृत्यु से बचने का अर्थ है कि जन्म-मरण से अवकाश अर्थात् जीवात्मा की मुक्ति वा मोक्ष। मृत्यु पर विजय व मोक्ष अर्थात् 43 नील वर्षों की दीर्घावधि तक ईश्वर के सान्निध्य में रहकर पूर्णानन्द की उपलब्धि करना।

हमें यह मन्त्र ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का आधार भी लगता है। मृत्यु से बचने के लिए स्वप्रकाशस्वरुप, ज्ञानस्वरुप, सब सृष्टि और विद्या का प्रकाश करने वाले परमेश्वर वा परमात्मा को जानकर ही हमारी अविद्या व अज्ञान का अन्धकार दूर होता है व हो सकता है। इसके लिए वेदाध्ययन अपरिहार्य है। वेदाध्ययन से ईश्वर का सत्य वा प्रमाणिक स्वरुप विदित होकर मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर लेता है अर्थात् उसे ईश्वर के सत्य स्वरुप का ज्ञान, प्रत्यक्ष व साक्षात्कार हो जाता है। महर्षि दयानन्द एवं अनेक ऋषि-मुनियों व योगियों के जीवनादर्श हमारे सामने हैं। सम्भवतः वेद की इसी शिक्षा को विस्तार देने के लिए महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन का प्रणयन किया था जिससे ध्याता योगी अपनी जीवात्मा में निभ्र्रान्त रूप से ईश्वर के प्रकाश व स्वरुप को अनुभव कर उसका प्रत्यक्ष व साक्षात्कार कर सके। योगदर्शन के अनुसार साधना करने व उसके आठवें अंग समाधि की सिद्धि होने पर ईश्वर का साक्षात्कार होता है। समािध अवस्था में ईश्वर साक्षात्कार का वर्णन करते हुए मुण्डकोपनिषद के साक्षात्धर्मा ऋषि का निम्न वाक्य वा श्लोक उपलब्ध होता है जिसे प्रमाण मानकर महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में उद्धृत किया है।

**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।**

**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे।**

**अर्थात् जब इस जीव के हृदय की अविद्या व अज्ञानरूपी गांठ कट (खुल) जाती है, (तब) सब संशय छिन्न होते (हो जाते हैं) और दुष्ट (अशुभ वा पाप) कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं। तभी उस परमात्मा जो कि अपने (ध्याता, उपासक व योगसाधक की) आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, (जीवात्मा व योगी) उस (परमात्मा) में (निभ्र्रान्त ज्ञान सहित) निवास करता है। इस स्थिति के प्राप्त होने पर मनुष्य को सत्य व असत्य का विवेक प्राप्त हो जाता है जो कि मृत्यु से पार होने अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की अर्हता है। कालान्तर में म्ृत्यु आने पर मनुष्य जन्म व मरण के, कर्म-फल-भोग के, चक्र से 43 नील वर्षों के लिए मुक्त हो जाता है।**

आजकल मनुष्य जिस प्रकार अर्थ वा धन तथा सुख-सुविधाओं रूपी भोगों का जीवन व्यतीत कर रहा है उससे वह कर्म-फल बन्धन में फंसता जाता है जिससे मृत्योपरान्त उसकी उन्नति होने के स्थान पर अवनति होती है। किस प्रवृत्ति के मनुष्य का अगला जन्म किस-किस पशु-पक्षी आदि निम्न योनी में हो सकता सकता है इसका अनुमान मनुस्मृति एव दर्शन आदि ग्रन्थों सहित महर्षि दयानन्द के साहित्य को पढ़कर लगाया जा सकता है। इस लेख को लिखने का हमारा प्रयोजन पाठकों का ध्यान वेदों की बहुमूल्य शिक्षाओं की ओर आकर्षित करना है जिससे वह अभ्युदय व निःश्रेयस को प्राप्त कर सके। आशा है कि यह लेख सामान्य पाठको के लिए उपयोगी होगा। यह भी कहना है कि लेखक एक साधारण व्यक्ति है जिसने यह लेख अपने स्वाध्याय व उससे प्राप्त किेंचित विवेक के आधार पर लिखा है। इस विषय में पाठक महर्षि दयानन्द व वेदादि ग्रन्थों का स्वाध्याय कर लाभान्वित हो सकते हैं। इति

-मनमोहन कुमार आर्य

पताः 196 चुक्खूवाला-2

देहरादून-248001

फोनः09412985121